ॐ

आर्यावर्त्त की वाणी

महर्षि दयानन्द और आर्य्य आदर्शों के सम्बन्ध
में कतिपय विचार

श्रीयुत टी॰ एल॰ वास्वानी कृत—
VOICE OF ARYAVARTA.
का

भाषानुवाद

अनुवादक—
[illegible]ी रघुनाथ पाठक

श्रीमद्दयानन्दाब्द १०६
श्री विक्रमाब्द सम्वत् १९८६

नवम्बर १९२९ ई०   मूल्य =)॥

प्रारम्भिक शब्द

पूज्यपाद श्री साधु टी० एल० वास्वानी ने जन्म शताब्दी के अवसर पर ऋषिदयानन्द के विषय में Torch-bearer के साथ साथ एक छोटी सी पुस्तिका Voice of Aryavarta लिखी थी जिसमें साधु जी ने नवयुवकों के प्रति ऋषि दयानन्द के सन्देश की व्याख्या की है। पुस्तक कवितामय गद्य में है जिसका एक एक शब्द हृदय पर गहरी अपील करता है। उसी पुस्तक का अनुवाद श्रीयुत रघुनाथ पाठक ने 'आर्यावर्त्त की वाणी' के रूप में प्रस्तुत किया है। यह अनुवाद मेरी दृष्टिगोचर हो चुका है। साधु जी की भाषा का अनुवाद करना कोई सरल कार्य नहीं है। फिर भी मुझे यह कहते हुये सन्तोष होता है कि अनुवादक को अपने कार्य में पर्याप्त सफलता हुई है। साधु जी की अंग्रेजी पुस्तक अधिकतर आर्य भाइयों तक नहीं पहुंच सकती, ऐसी दशा में इस अनुवाद की बड़ी आवश्यकता थी, जिसे पूर्ण कर अनुवादक ने आर्य-साहित्य की एक आवश्यक सेवा की है।

मेरठ कालेज
१६ ११ २६

धर्म्मेन्द्रनाथ शास्त्री,
अध्यापक

अनुवादक के दो शब्द

श्री मद्दयानन्द-जन्म-शताब्दि के पुण्य अवसर पर मुझे प्रसिद्ध आदर्शवादी साधुवर्य्य श्री० टी० यल० वास्वानी कृत Voice of Aryavarta के देखने और पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुस्तक का विषय और वर्णनशैली मुझे बहुत पसन्द आई। मैंने विचार किया कि यदि इसका भाषानुवाद हिन्दी जानने वालों के सामने रख दिया जाय तो पुस्तक की उपादेयता बढ़ जायगी और बड़ी संख्या में लोग इससे लाभ उठा सकेंगे। साथ ही आर्य्य-समाज और हिन्दी भाषा के साहित्य में भी वृद्धि हो जायगी। मैंने अपने इस विचार को कार्य्य में स्वयं परिणत करने का संकल्प किया। और मुझे हर्ष है कि मेरा यह संकल्प पूरा हुआ।

अनुवाद के सम्बन्ध में मेरा कुछ भी कहना व्यर्थ है। इसकी परख तो स्वयं पाठक गण करेंगे। यह मेरा काम नहीं है। हाँ-इतना कहने का मैं साहस कर सकता हूँ कि लेखक के भावों और पुस्तक की मौलिकता को अनुवाद में बनाये रखने का मैंने विशेष ध्यान रक्खा है। शब्दों और वाक्यों को बिना तोड़े, मरोड़े, अनुवाद किया गया है। इसकी परीक्षा मूल-पुस्तक और अनुवाद को साथ साथ पढ़ने से हो सकती है। (Call to Young India) (तरुण-भारत को पुकार) नामक अध्याय का अनुवाद मैंने श्री प्रो० धर्म्मेन्द्रनाथ जी कृत "Torch-Bearer„ (पथ प्रदीप) के अनुवाद से लिया है। जिसकेलिये मैंने अनुवादक से आज्ञा लेली थी। साथ ही "जहाँ कृष्ण वशी बजाता था" नामक अध्याय स्थान पूर्ति के लिये मैंने पथ-प्रदीपसे लिया है।

मैं श्रद्धेय वासवानी जी, पूज्य प्रो० धर्म्मेन्द्रनाथ जी एम. ए. श्री पं० धर्म्मदेव जी विद्यावाचस्पति तथा श्री बा० यज्ञदत्त जी, बी० ए० एल० एल० बी० सहायक मन्त्री रक्षा समिति का कृतज्ञ हूँ जिन्हों ने मुझे प्रोत्साहन प्रदान किया है।

यदि यह अनुवाद उपयोगी सिद्ध हुआ और जनता को लाभ पहुँचा सका, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

बलिदान भवन
देहली
१५-११-१९२६

—रघुनाथ पाठक।

गरजती हुई आवाज़

—०◦◦—

जिस समय अन्धकार में लीन जीवन की लतायें भारत के प्राचीन समुद्र-तट पर झुकी हुई थीं; और अंगूर की वह बेल जिस पर ज्ञान के फल लगते थे, मुरझा चुकी थी, जब सत्य-दिवाकर पर अविद्या के मेघ मण्डरा रहे थे लोग कुप्रथाओं के गुलाम बन चुके थे, और शुद्ध तर्क का स्थान अन्ध विश्वास ने ले लिया था, तब ही देश में ऋषि दयानन्द का अविर्भाव हुआ। वह ज्ञान की ज्योति के साथ अविद्यान्धकार में घुस गया। दयानन्द की गरजती हुई आवाज़ से निकली हुई सत्य की प्रतिध्वनि ने हृदयों में कम्पन उत्पन्न करके सोते हुए देश को जगा दिया।

—एक ईसाई सज्जन।

—०◦◦—

स्वामी दयानन्द के प्रति

जिस प्रकार बादलों की गरज एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर होती हुई पुनः आकाश में विलीन हो जाती है उसी भांति भगवान दयानन्द ! आपके शब्दों और विचारों की प्रतिध्वनि एक हृदय से दूसरे हृदय में कम्पन उत्पन्न करती हुई पुनः उस विशाल आत्मा की ओर जा रही है जिसने उसे आशा के गौरवयुक्त मिशन एवं सत्य के तीर्थ की ओर प्रेरित किया था।

ज्योंहीं मैं उस सुनहरे युग की ओर जो अब भी अपने जीवन प्रभात की नाईं दे दीप्यमान हो रहा है टकटकी लगा कर देखता हूँ, त्योंही भगवान दयानन्द ! आपकी जादू की छड़ीपर ताण्डव नृत्य करती हुई भारत की महत्ता मेरे सम्मुख आजाती है। यह स्वप्न नहीं है। भले ही वास्तविकता का रूप वास्तविक न दीख पड़े, परन्तु यह मानवी आत्मा पर परमात्मा के द्वारा किये गये स्पर्श के सदृश होता है।

भगवन् ! आपका गौरव इसी में है कि आपने स्वप्नों को वास्तविक रूप दिला दिया।

राष्ट्र के नवयुवकों के प्रति
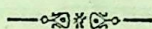
खड़ा निस्तब्ध जलधि के तीर,
तमाच्छन्न था प्राकृत का चीर।
सलिल में उथल खूब हिलमिल,
लहरिये लहत किल किल।

थिरकते तारों की झिलमिल,
निरखि मन व्यापी चिन्ता पीर॥
मौन हैं! उन्हें नहीं कहना,
दिव्य युग के लब्ध रहस्य को?

शुचि स्वातन्त्र मुकुट युत भाल,
प्राची दिशि राज्ञी थी आसीन।
कौन? थी वह भारत माता,
सर्व सम्पन्न सगुण त्राता।

निहारा ऊर्ध्व अर्द्ध का भाग,
हुआ चिन्ता-कुल-चंचल चित्त।
रोक से रुका न, हो तन्मय,
मौनता में निकले उद्गार।

प्रभु-पावन तेरा शुचि वेश,
दास-वृत्ति में भारत देश।
मिला संदेश निधि-तट पर,
युवाओं! लिखो हृदय-पट पर।

यज्ञ-पुर चला त्वरित गति से,
सेव्य है कर्म्म कांड विधि से।
उठो! है निशा नहीं, है भोर,
रचो स्वातन्त्र सदन-शिर मौर।

कुलिश प्रत्येक विधि-वत हो,
यज्ञ गीतों का गायक हो।

पद्यानुवादकः—
(अमीचन्द्र)

❀ आर्य्यावर्त की वाणी ❀

पूर्व बचन

कुछ युवकों के आग्रह करने पर मैंने यह छोटी सी पुस्तक उन्हीं के लिये लिखो है। ऋषि दयानन्द की आने वाली जन्म-शताब्दी के लिये उनका उत्साह मनोहर है। और परमात्मा ने मेरे हृदय को युवकों के साथ ग्रथित कर दिया है।

मेरे जीवन का स्वप्न भारत की सेवा के लिये आध्यात्मिक वीरता का एक समाज है। इस समाज में युवा ब्रह्मचारी होंगे और क्या ब्रह्मचारी, तपस्वी दयानन्द इस प्रकार के समाज का स्वाभाविक नेता नहीं हैं ?

किसी राष्ट्र के नवीन जीवन में जागृत होने का लक्षण बीर पूजा होती है। जापान में प्रति वर्ष विद्यार्थी उन जापानी वीरों के मन्दिरों में पूजा करते हैं जो मुर्दा ख्याल नहीं किये जाते प्रत्युत अपने राष्ट्र में सजीव भाग लेते हुए ख्याल किये जाते हैं। संन्यासी, फकीर और तपस्वी दयानन्द ने हमारे राष्ट्रीय जीवन में योग दिया है और इसीलिये हम उसे नवभारत का निर्माता और इतिहास का नायक मानते हैं।

वर्तमान भारतवर्ष के धर्माचार्य्यों में दयानन्द शक्ति शाली आर्यावर्त की बाणी था। उसके जीवन और उपदेशों में वह सन्देश विद्यमान है जिसकी आज तरुण भारत को आवश्यकता है।

ऋषि दयानन्द का सन्देश आत्म-विश्वास का सन्देश है! युवकों! अपने आत्मीय केन्द्र से काम करो और इसके लिये उन आदर्शों को समझो जिन्होंने भारतवर्ष को एक समय राष्ट्रों का नेता बना दिया था।

यदि तुम प्राचीन भारतवर्ष से भी श्रेष्ठ, उत्तम और नवीन मर्यादाएं स्थापित करना चाहते हो तो अपने आत्मीय केन्द्र से काम करो।

मुझे जान पड़ता है कि ऋषि दयानन्द में अग्नि का अंश था। वह अग्नि आध्यात्मिक अग्नि थी। जिस समय वह अग्नि देश के भिन्न भिन्न भागों के युवा ब्रह्मचारियों के हृदयों में प्रज्वलित हो जायगी उस समय भारत वह दिन देखेगा जिसका वह स्वप्न देख रहा है। वह दिन स्वाधीनता का दिन होगा।

मुझे यह निश्चय नहीं था कि Voice of Aryavarta शताब्दी के ठीक समय पर प्रकाशित हो जायगी, मैंने "तरुण भारत की पुकार" (Call To Young India) नामक अध्याय जो पहिले इसी पुस्तिका के लिये लिखा गया था पथ प्रदीप (Torch-Bearer) नाम की पुस्तक में जोड़ दिया था।

मैं इस छोटी सी पुस्तक को प्रेम-पूर्ण शुभ कामनाओं और उस महत्वाकांक्षा के साथ जिसका उल्लेख एक वेद के मन्त्र में किया गया है, राष्ट्र के नवयुवकों के समक्ष रखता हूं।

मन्त्र का भाव यह है—घृणा से हटाकर, स्वाधीनता एकता की ओर ले जा, आर्य्यों! एक दूसरे से इस प्रकार प्रेम करो जैसे गाय अपने बछड़े से।

—०※०—

जागो

उसे आये एक शताब्दि व्यतीत हो गई। काठियावाड़ के टंकारा नाम के ग्राम में सन् १८२४ में उसका जन्म हुआ और सन् १८८३ में अजमेर में उसका देहावसान हुआ।

२३ वर्ष की अवस्था में वह अपने पिता के सम्पन्न घर को छोड़ देता है। उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो गया है और इसी लिये उसे अवश्य ही सत्य की खोज में जाना चाहिये। ज्ञान तो उसे तब ही हो गया था जबकि वह केवल १४ वर्ष का बालक था। उसके पिता उसे शिव-मन्दिर में ले जाते हैं और रात्रि भर व्रत रखने को कहते हैं। वह रात्रि भर जागता है। एक एक करके पुजारी लोग सो जाते हैं। रात्रि के १२ बजे उसके पिता भी सो जाते हैं। वह अकेला रह जाता है। उस एकान्त अवस्था में दिव्य-ज्योति उसकी आत्मा का स्पर्श करती है। वह देखता है कि एक चूहा शिव-मूर्ति के साथ अठखेलियां कर रहा है। यह लड़का पवित्र,सत्य का प्रेमी, अपने से कहता है: —

"क्या यह महादेव संसार का रक्षक हो सकता है?"

उसका पिता अम्बाशंकर अपने ढीठ लड़के पर कुपित हैं। परन्तु उसकी तो आत्मा जाग चुकी है। उसके माता-पिता उसकी शादी करना चाहते हैं परन्तु वह सत्य की सेवा करने और उसी पर जीवन अर्पण करने का दृढ़ संकल्प कर लेता है। विवाह के बन्धनों से उसे घृणा थी अतः वह घर से बाहर निकल भागता है। उसके पिता उसे एक मन्दिर में पकड़ लेते हैं।

क्रोध में भरे अम्बाशङ्कर उससे कहते हैं "अरे ! तूने अपने कुल को सदा के लिये कलङ्कित कर दिया।" अम्बाशङ्कर को नहीं ज्ञात कि उनके पुत्र के भाग्य में एक देदीप्यमान ज्योति होना लिखा है।

दयानन्द फिर दुबारा भागता है। वह दूर देशस्थ काश्मीर और तिब्बत के राज्यों में प्रवेश करता हुआ बाहर घूमता फिरता है। वास्तव में ज्ञान उन्हीं को प्राप्त होता है जो जङ्गलों की यात्रा करते हैं।

दयानन्द ३६ वर्ष खोज में बिताता है। इसके बाद उसकी स्वामी विरजानन्द से मथुरा में भेंट होती है। २½ वर्ष तक वहां उनके चरणों में विद्याध्ययन करता है। ये ध्यान तथा अध्ययन के वर्ष अभ्यास एवं तपस्या के वर्ष थे। तत्पश्चात् उसके गुरु का उसे यह सन्देश मिलता है "दयानन्द ! तू संसार में जा और मनुष्य जाति में ज्ञान का प्रसार कर।"

गुरु-सन्देश पाकर दयानन्द कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होता है। चान्दी और सोने से वह मुंह मोड़ता है। उसका धन, ज्ञान और तपस्या है और इसी धन के बल पर वह आर्य्य समाज का प्रवर्त्तक और राष्ट्र का निर्माता बनता है।

वह एक स्थान से दूसरे स्थान तक "जागो" "जागो" के शक्ति-पूर्ण सन्देश के साथ जाता है। इसका कारण यह था कि जनता अपने प्राचीन पैत्रिक अधिकारों को भूल चुकी थी, और शिक्षित समुदाय में संशयवाद छाया हुआ था। सर्व्व-साधारण अन्ध विश्वास (Superstition) में पड़ा हुआ था और राष्ट्र भर में आर्य्य आदर्शों की अज्ञान वश अवहेलना की जा रही थी। हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर दयानन्द के निवास स्थान

पर जो पाखण्ड खण्डनी पताका फहरा रही थी वही पताका दयानन्द के जीवन का मुख्य चिन्ह रही। उसका आत्मा धर्म्म के नाम पर किये जाने वाले असत्य व्यवहार के विरुद्ध विद्रोह करता है।

कार लाइल ने ठीक कहा है कि समस्त वीरपुरुषों की पहली विशेषता (गुण) गम्भीर, महत्वपूर्ण और यथार्थ सच्चाई होती है। दयानन्द में यह विशेषता वीरता के रूप में ही थी। सत्य के प्रेम में वह न राजा को ही छोड़ता है और न पुरोहितों को। वह अपने इस सत्य-प्रेम के कारण दुःख उठाता है। बहुत से उससे अप्रसन्न हो जाते हैं तथा बहुत से उसे नास्तिक कहने लग जाते हैं और अन्त में कुछेक लोग उसकी जान लेने के लिये षडयन्त्र रचते हैं। उदयपुर नरेश के आमन्त्रित करने पर दयानन्द उदयपुर पहुंचता है। वहां पर अन्ध विश्वासों के विरुद्ध उपदेश करता है। महाराजा उदयपुर उसे एक लिङ्ग मन्दिर के महन्त की गद्दी भेंट करने का प्रलोभन देते हैं। इस मन्दिर की जायदाद से एक लाख रुपये वार्षिक की आय थी। केवल शर्त यह थी कि दयानन्द वर्तमान सनातन धर्म्म का उपदेश करे और मूर्ति पूजा का खण्डन करना छोड़ दे। इस पर दयानन्द उदयपुर नरेश को उत्तर देता है—"हे राजन्! मैं सत्य का प्रचारक हूं।" उदयपुर से वह शाहपुरा पहुंचता है। यहां पर जोधपुर के महाराज का उसे निमन्त्रण मिलता है। दयानन्द जोधपुर में कुछ मास निवास करता है और शासक और शासितों में एक नवीन जीवन का सञ्चार करने का यत्न करता है। पांचवें महीने में राज कर्मचारीगण उसके विरुद्ध षड़यन्त्र करते हैं। क्योंकि राजा का सुधार करने के कारण उसने एक वेश्या को भड़का दिया था। उसके घरमें

चोरी होती है। कुछ दिन के बाद उसे जुकाम होता है और बिना कुछ खाये पलङ्ग पर जा लेटता है। दूध अवश्य पी लेता है। दूध में ज़हर है। उसके रसोइये (पाचक) जगन्नाथ को घूंस देदी गई है। दयानन्द उसे क्षमा कर देता है और नैपाल भागजाने के लिये उसे अपने पास से धन भी दे देता है। दयानन्द की अवस्था दिन प्रति दिन विगड़ती जाती है। जोधपुर से आबू जाने का निश्चय करता है। खिन्न हृदय जोधपुर नरेश स्वामी जी की पालकी के पीछे कुछ दूर पैदल जाते हैं। आबू पर उसे कुछ सुख मिलता है। परन्तु उसके डाक्टर अजमेर चले जाने का आग्रह करते हैं।

अक्टूबर की ३० तारीख को दयानन्द अजमेर में मृत्यु-शय्या पर लेटा है। हकीम पीर इमामअली और डाक्टर न्यूटन उसे देखने के लिये बुलाये जाते हैं। उसके शिष्य आ आ कर उसकी शय्या के समीप खड़े हो जाते हैं। दयानन्द उनसे पूछता है—"तुम लोग क्या चाहते हो।" वे उत्तर देते हैं—"महाराज! हमारी परमात्मा से प्रार्थना है कि आप शीघ्र स्वस्थ्य हो जावें।" दयानन्द कहता है—"यह तो केवल शरीर है इसका और क्या अच्छा हो सकता है?"

शाम के ५½ बजे हैं। दयानन्द तिथि और पक्ष मालूम करता है। ऊपर को देख कर वेद मन्त्रों का उच्चारण और गायत्री का पाठ करता है। कुछ देर तक समाधिस्थ रहने के बाद नेत्रों को खोल कर कहता है। "हे दयालु भगवन्! तेरी इच्छा पूर्ण हो।" यह कह कर वह अन्तिम श्वास लेता है।

यह दीपावली का पवित्र दिन है। इस दिन हिन्दु भारतवर्ष रोशनी के पवित्र त्यौहार को मना रहा है। यह पर्व्व लक्ष्मी

और सरस्वती दोनों को प्रिय है। सरस्वती का दयालु पुत्र दयानन्द दीपावली के दिन ही इस लोक से ब्रह्मलोक की ओर प्रस्थान करता है। दयानन्द ने गीता में वर्णित ज्ञान-यज्ञ के साथ शाश्वत ब्रह्म की उपासना की थी।

"तू अपने आपको जान„ यह सुकरात का महान् सन्देश था। उसका यूनान के प्राचीन धर्म्म में विश्वास नहीं था। उसका विश्वास केवल एक परमात्मा में था इसी लिये उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया। उसने प्रसन्नता पूर्वक ज़हर (Hem Lock) का प्याला पी लिया और शान्ति पूर्वक प्रस्थान किया।

"तुम प्राचीन विद्या को जानो"। यह दयानन्द का महान् सन्देश था। उसका विश्वास भी केवल एक परमात्मा में ही था। उसे विष दिया गया। उसने सब को क्षमा किया और शान्ति पूर्वक यहां से बिदा हुआ।

एक प्राचीन सुन्दर सूत्र है जिसका अर्थ है "उत्तिष्ठ जाग्रत ! उठो ! जागो !

दयानन्द के जीवन का मुख्य उद्देश्य यही था। इस प्राचीन एवं चिर पीड़ित राष्ट्र के प्रति दयानन्द की पुकार थीः —

"पूर्व के ऋषियों की सन्तानों ! तुम्हें सोते बहुत समय बीत गया। अब जागने का समय है।"

— ❧✲❧ —
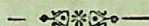
तुम्हारा आत्मीय केन्द्र
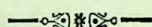
इस एक मनुष्य में कैसी विलक्षण शक्ति थी। उसने दूर दूर तक यात्रा की। भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक आर्य्य आदर्शों का उपदेश किया। उसे किसी का लिहाज नहीं था। अप्रिय सत्य का उपदेश देना था। उसके आत्मिक बल के सामने जनता अपना मस्तक नत कर देती थी। राजाओं और जनता को झिड़कने में वीर और निर्भीक था। ऐसा दयानन्द मनुष्यों में से एक मनुष्य था।

कुछ अंग्रेज लेखक उसे वर्तमान भारत के "लूथर„ की पदवी देकर उसका सम्मान करते हैं परन्तु मेरा विश्वास है कि दयानन्द उससे महान था। मुझे "लूथर" के जीवन में वह त्याग और तपस्या नहीं दीख पड़ती जिन्होंने भारत के इस आदित्य ब्रह्मचारी के जीवन को गौरवान्वित एवं मूल्यवान बना दिया था।

दयानन्द ऋषि था "लूथर" सुधारक था। दोनों विद्वान थे परन्तु दयानन्द की विद्वत्ता अधिक उच्चकोटि की थी। मैं दयानन्द को वेद-विद्या (Vedic Lore) का भ्रमण-शील विश्व कोष (Ency clopedia) मानता हूं।

मैं दयानन्द को आचार्य मान, उसका आदर करता हूं। इस शब्द का प्रयोग मैं केवल व्यवहारिक दृष्टि से नहीं करता। शंकर, रामानुज और माधव भी आचार्य थे। ये तीनों मध्य-कालीन भारत के आचार्य थे। दयानन्द वर्तमान भारत का आचार्य्य था।

आचार्य्य किसे कहते हैं ? जो विचार और आचार में एकदम महान हो उसे आचार्य्य कहते हैं। सोचने की शक्ति को विचार और आध्यात्मिक चरित्र की शक्ति को आचार कहते हैं। पाश्चात्य देशों में बड़े बड़े विचारक हो चुके हैं परन्तु उनमें से कितने आचार में दयानन्द की समता कर सकते थे ?

स्कौपनहैनर (Scopenhaner) बड़े सुधारकों में से एक था। उसे उपनिषदों से बड़ा प्रेम था। जिन्होंने उसकी जीवनी को पढ़ा होगा उन्हें पता लगा होगा कि वह कैसा अभिमानी था अपने भृत्यों के प्रति असद् और नीच व्यवहार करने वाला व्यक्ति था। उसने अपना जीवन उपनिषदों की शिक्षानुसार नहीं बिताया। उसका आचार उसके विचारों के अनुकूल नहीं था।

मैं जर्मनी के इस विचारक को विचारक, परन्तु आचार्य्य नहीं मानता। दयानन्द न केवल वैदिक पण्डित ही था, प्रत्युत वह आध्यात्मिक साधन सम्पन्न आचार्य था।

उसने देश वासियों को अन्ध विश्वासों, कुप्रथाओं और मूर्खता के बन्धनों से जकड़ा हुआ पाया। उसकी इच्छा थी कि देश इन बेड़ियों के बन्धनों से मुक्त हो जावे।

मेरे विचार में दयानन्द का मुख्य संदेश दो प्रकार था। वह चाहता था कि भारतवर्ष अपनी शक्तियों से परिचित हो और भारत अपना बनने के लिये प्रयत्नशील हो और अपने बल पर काम करना सीखे और करे। आजकल नवयुवक बेकन, वनयनमिल और मिल्टन का उल्लेख करते हैं उनमें से कितने शंकर, कपिल, व्यास और जैमिनि को जानते हैं ?

हमारे विद्यार्थी ऐरिस्टौटिल के बनाये तर्क शास्त्र को पढ़ते

हैं परन्तु कितने विद्यार्थियों ने हिंदू एवं बौद्ध दर्शनाचार्यों के बनाये हुए न्याय सूत्रों और षड़ दर्शन को पढ़ा है ? कितनों को पता है कि न्याय शास्त्र में जैमिनि एक विख्यात व्यक्ति है।

स्पेन्सर और हीगल के पढ़ने वाले कितने विद्यार्थी हिंदू आत्म-विद्या (Metaphysics) से अभिज्ञ हैं ? ऐसे कितने विद्यार्थियों ने जो पाश्चात्य पाठ्य पुस्तकों को पढ़ते हैं अचेतनता के मनो विज्ञान पर प्रकाश डालने के लिये पतञ्जलि कृत योग दर्शन के पढ़ने की चेष्टा की है ? वर्तमान शासन-विधान पर बहस करने वालों में से कितनों ने प्राचीन भारतवर्ष की राजनीति और शासन-प्रणाली के आदर्शों को जानने का यत्न किया है ?

आक्सफोर्ड के संस्कृत प्रोफेसर मैक्डोनैल बोडेन ने रायल एशियाटिक सोसाइटी (Royal Asiatic Society) की मुम्बई शाखा के स्वर्ण-पदक का ग्रहण करते हुए कहा था— "समय है कि अब ऋग्वेद का अङ्गरेजी में उल्था किया जावे, यही नहीं बल्कि अन्य भाषाओं में भी इसका उल्था होना चाहिये।" किन्तु हम भारतवासी अपनी संस्कृति, अपने आदर्शों साहित्य और कला-कौशल को जानने तथा उनकी रक्षा करने के लिये क्या कर रहे हैं ? क्या भारतवर्ष ने हमारे हृदयों पर अधिकार जमा लिया है ? दयानन्द ने भारतवासियों को संस्कृत और हिन्दी पढ़ने का उपदेश दिया। वह चाहता था कि भारतवर्ष स्वयं अपने पुत्र और पुत्रियों के हृदय पर अधिकार जमायें।

दयानन्द ने देखा कि पश्चिम की शिक्षा और रीति रिवाज़ भारतवर्ष पर आक्रमण कर रहे हैं। उसे भय था कि कहीं

भारतवर्ष अपना धर्म्म, अपनी आत्मा और जीवन के गूढ़ रहस्यों को पाश्चात्य देशों के अर्पण न कर देवें। भारतवर्ष को अवश्य ही अपने स्वरूप को जानना चाहिए यह वह ज्योति थी जिसका प्रकाश दयानन्द के हृदय-पटल पर पड़ा था।

दयानन्द की धारणा थी कि जब तक भारतीय नवयुवक तपस्या के मार्ग पर चलना नहीं सीखेंगे तब तक भारतवर्ष को स्वाधीनता प्राप्त नहीं होगी। राष्ट्र के जीवन निर्माण के लिये अन्य वस्तुओं की अपेक्षा तपस्या की अधिक आवश्यकता है। सफलता प्राप्त करने की शक्ति तपस्या में है।

जापान की एक बालिका अपने देश जापान की सेवा करना चाहती थी, यह वह समय था जब जापान और रूस का युद्ध हो रहा था। लड़की निर्धन थी, परन्तु देश सेवा करने के लिये लालायित थी। उसने अपने चित्त में विचार किया कि उसके पास ऐसी कौनसी वस्तु थी जिसको वह अर्पण कर सके। उसने प्रार्थना की। सहसा ही उसके हृदय में आत्मोत्सर्ग करने की समा गई। रण-क्षेत्र में जा, जापान के लिये शत्रु से लड़ते हुए उसने अपने प्राण देदिये। जापानियों का विश्वास है कि उसकी मृत्युपर यह आकाश वाणी हुई थी "हे जापान की नव बालिका! तू धन्य है! तूने अपने आत्मोत्सर्ग के द्वारा अपने देश वासियों को देवताओं की पंक्ति में बैठने योग्य बना दिया।"

क्या यह प्रसंग अनुकरणीय नहीं है? दयानन्द सरीखे तपस्वी पुरुष और तपस्वी स्त्रियाँ धन्य हैं क्योंकि वे भारत वासियों को देवताओं की पंक्ति में बैठने योग्य बनाते हैं।

युवको ! तुम चिरकाल तक आमोद-प्रमोदों में लिप्त रह चुके हो। तुमने जीवन की गूढ़ और अमूल्य विशेषताओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। तुमने सुख, सम्पत्ति और शक्ति की खोज में भारतवर्ष को पैरों तले कुचला है। तुम्हें तपस्या करनी चाहिये। आचार और सुधार का यही रहस्य है।

तपस्या-मन्दिर
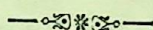
नगर निवासी सोए पड़े हैं। विद्युत् प्रकाश के नीचे ऐसे भोर जबकि प्रत्येक वस्तु पवित्र मौनता में स्तब्ध रहती है ये सड़क पर खड़े हुए कौन गीत गा रहे हैं ?

जय जय पिता मह परम आनन्द दाता, यह उनके राग की टेक है। शोक ! आज कल परमात्मा का ऐसा गुणानुवाद करने वालों का संख्या बहुत न्यून है। भारतवर्ष प्राचीनता को छोड़ अर्वाचीनता का पाठ पढ़ता और अपने इष्ट देव को भूलता जा रहा है।

उस दिन परमात्मा का गुणानुवाद करने से उनका क्या अभिप्राय था ? वह दिन दयानन्द की पुण्य-स्मृति का दिन था। लोगों ने दयानन्द को मृत्यु-शय्या पर लेटे इस प्रार्थना का उच्चारण करते हुए देखा था "परमात्मन् ! तेरी इच्छा पूर्ण हो। ओ३म् ! शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

मुझे जान पड़ता है कि दयानन्द के हृदय में वह सन्देश विद्यमान था जिसका वह उच्चारण न कर सका। दयानन्द ने अपना सन्देश किसी समाज विशेष को नहीं प्रत्युत समस्त संसार के लिये दिया था।

इस आर्य्य-सन्देश को हम तक पहुँचाने में दयानन्द ने वैसे ही कष्ट पाये जैसे कि इस दुःखमय ससार के महान् व्यक्ति कष्ट पा चुके हैं। अरस्तू को निर्वासित किया गया; गैलीलियो को कैदखाने में डाला गया, दयानन्द को तीव्र वेदना पहुँचाई गई परन्तु वह निर्भीक था। स्थान २ पर आर्य्य-सन्देश की दुंदु-

भो बजाता फिरा। अभी तक हम में से बहुतों ने उसके सन्देश का मूल्य नहीं समझा।

मैं उस दिन की राह देख रहा हूँ जिस दिन उसके पवित्र नाम के गीत भारत वर्ष के स्कूलों और कालिजों में गाये जायेंगे एवं चीन, जापान, युरोप, और अमेरिका जैसे दूर देशों में उसके नाम को उपासना होगी।

भारत वर्ष को आवश्यकता बहुत बड़ो थी। भारत की मुक्ति के लिये दैवानुकम्पा इने गिने व्यक्तियों के हृदयों में काम कर रही थी। उन्हीं में से एक दयानन्द था।

भारत वर्ष के लिये उसने अपने माता-पिता और बान्धवों का परित्याग किया। उसने पिता के धन-वैभव को छोड़ निर्धनता से नाता जोड़ा। वह निर्धनों का मित्र और पशु-पक्षियों का सखा बना, उसने हम सब तक वेद-सन्देश पहुँचाया। उसने देशवासियों को दासत्व के बन्धनों में जकड़ा पाया परन्तु उसका विश्वास था कि भारत वर्ष उनकी अपेक्षा महान् है जिन्होंने उसे दासता की बेड़ियों में डाल रक्खा है। कारण यह है कि भारतवासी ऋषि सन्तान हैं।

उसने देश को निर्धन पाया। किन्तु उसका अटल विश्वास था कि भारत की निर्धनता उस समय दूर हो जायगी जब वह अपने प्राचीन ज्ञान को प्राप्त कर लेगा।

उसके अपने ही उसके विरुद्ध युद्ध करने पर उतारु हो गये।

क्या दयानन्द धर्म्माचार्य्य नहीं था। और संसार के इतिहास में धर्म्माचार्यों और पुरोहितों में कब सङ्घर्ष नहीं रहा? धर्म्माचार्य्य परमात्मा के योद्धा होते है। दयानन्द भी

एक योद्धा था। उसने बहुत सी लड़ाइयां लड़ीं। उसका मन कभी विचलित नहीं हुआ। पाखण्डों और अन्ध-विश्वासों के विरुद्ध युद्ध करने का उसे फल मिला। उसे विष दिया गया। उसने विष-दाता को आशीर्वाद दे भयानक काण्ड को सौन्दर्य्य में परिवर्तित किया।

दयानन्द ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की। उसने ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!! का पाठ करते हुए यहाँ से प्रस्थान किया।

फ़ारस का एक राजा अमरत्व के फूल (Flower of Immortality) की खोज में अपने घर से निकला। अन्त में उसे वह फूल पर्वतों की कन्दराओं में मिला।

दयानन्द अपने फूल की खोज में निकला और उसे वह फूल वेदों के ज्ञान में मिला।

किसी ने दयानन्द से पूछा "तुम्हारा गुरु कौन है ?" दयानन्द ने उत्तर दिया "मेरा गुरु वेद है ?"

दयानन्द ने ऋषियों के सन्देश के महत्त्व को समझा। दयानन्द ने ऋषियों के बतलाये हुए मार्ग का फिर से निर्देश किया। वैदिक मन्त्र का इस विषय में यह उपदेश है :-

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिसं।

यस्य देवा यस्य च्छाया ऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥

"वह आत्मा का दाता है बल का दाता है उसे हम हविष भेंट करते हैं।"

दयानन्द की मुख्य महत्त्वाकांक्षा यही थी। दयानन्द ने अपने जीवन को बलि रूप में परमात्मा के अर्पण किया। उसने प्रत्येक काम परमात्मा की उपासना रूपमें किया। परमात्मा को विशिष्ट भेंट देने के लिये उसने असत्य के साथ युद्ध किया। निस्सन्देह दयानन्द का जीवन तपस्या और त्याग का मन्दिर था।
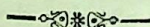
वेदों की ओर चलो

(Back to the Vedas)

भारतीय समस्या को दयानन्द ने जिस दृष्टि से देखा था उस दृष्टि से हममें से बहुतों ने इसको नहीं देखा। स्वाधीनता की शक्ति का सम्बन्ध सदाचार से है। राष्ट्र की आन्तरिक शक्ति को मुक्त करना भारतीय समस्या है। आज इस शक्ति का ह्रास हो रहा है। हा! विदेशी वातावरण! ऐसी प्रथाओं और मतों की व्यापकता जिनका भारतीय प्रतिभा को ज्ञान नहीं!

दयानन्द ने उपदेश दिया "वेदों की ओर चलो।" मित्रों! तुम्हें न केवल शासन-विधान को परिवर्तन करना चाहिये वरन् अपने आपको भी बदलना चाहिये। तुम्हें चाहिए कि अपनी आदतों, अपनी प्रथाओं, अपनी सोसाइटियों और अपने जीवन के रूपों को भी बदल दो। तुम्हें भारतीय आदर्शों और संस्कृति की शिक्षा की आवश्यकता है।

दयानन्द ने अन्य बातों की अपेक्षा जातीय ज्ञान, जाति सुधार, वेदों के ज्ञान की प्राप्ति पर विशेष ध्यान दिया था।

(१) जातीय ज्ञान को नवीन शिक्षा द्वारा दृढ़ करना परमावश्यक है। वर्तमान शिक्षा भ्रमपूर्ण है। यह अङ्गरेज़ी आदर्शों का निकृष्ट अनुकरण मात्र है। अतएव इसमें जीवन के सिद्धांत बहुत कम हैं।

(२) आत्म गौरव को अभिमान मत मानो। आओ हम अपने अपराधों को स्वीकार करें। ऐसी आदतें, ऐसी सामाजिक

त्रुटियां विद्यमान हैं जिन्होंने हमें उतनाही नीच बना दिया है जितना नौकर शाही शासन ने। स्त्रियों और निर्धनों के प्रति हममें एक प्रकार का सम्मान होना आवश्यक है। हमको उनके मानवी अधिकारों की रक्षा करनी चाहिये। इन्हें हमारे समाज ने चिरकाल तक पैरों तले कुचला है। हमें स्वयं अपना प्रायश्चित करना चाहिये। भारतवर्ष को अन्य राष्ट्रों के पास अपना सन्देश लेकर जाने के पूर्व प्रायश्चित संस्कार की आवश्यकता होगी।

(३) "वेदों का ज्ञान" यही भारतवर्ष का संदेश है। संसार इसका आदर करता है। यह आत्मा के महत्त्व की घोषणा करता है। वस्तुतः इतिहास राजनीतिज्ञों का नहीं प्रत्युत ऋषियों, तपस्वियों और शहीदों का ग्रन्थ होता है। निर्माण शक्ति कोलाहल में कभी प्राप्त नहीं होती वरन् तपस्या और ईश्वर प्रदत्त बुद्धि के द्वारा प्राप्त होती है। इसी आधार पर हम बुद्ध, नानक, शंकर, गौतम और डरविन प्रभृति महात्माओं का आदर करते हैं। इसी के नाते मैं दयानन्द की वन्दना करता हूं।

मैं परमात्मा को अनेक धन्यवाद देता हूं कि उसने इस देश के उद्धार के लिये दयानन्द को हम तक भेजा।

—०—
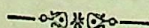
आधुनिक युवकों के लिये मन्त्र

नवयुवकों से इस दयानन्द के जीवन पर विचार करने की प्रेरणा करने से मेरा क्या अभिप्राय है ? वह शक्ति का संदेशहर है। भारतवर्ष को इस समय शक्ति की ज़रुरत है। बलवान ही देश की रक्षा करते हैं। संसार बलवानों का आदर करता है। बल के बिना भलमानसाहत अच्छी नहीं होती। यह कहा जाता है कि एकता में शक्ति का निवास है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि शक्ति से एकता और स्वाधीनता का जन्म होता है।

"बलवान बनो !" वर्तमान भारत के लिये यही मन्त्र है। यह प्राचीन ऋषियों का मन्त्र है। वेद में लिखा है कि बड़ी बड़ी शक्तियां अग्नि से उत्पन्न होती हैं। यजुर्वेद में हमने पढ़ा "शरीर और मष्तिष्क में तू बलवान बन !" दयानन्द शक्ति के भाव में रंगा हुआ था। उसने किसी से क्षमा नहीं मांगी वरन् निर्भयता पूर्वक अपना महान् सन्देश देता फिरा। समालोचकों ने उसे झगड़ालू कहा। बहुतों ने उसे गालियां दीं। कुछेक ने उसके ऊपर पत्थर फेंके, परन्तु उसने किसी की पर्वा न की। वह देश वासियों को जगाता फिरा। लोगों ने किस्मत के नाम पर अपनी गिरी हुई दशा पर सन्तोष कर लिया था। दयानन्द ने महान् भविष्य के "भाग्य" पर भरोसा रखने का उपदेश किया।

वह शक्ति शाली था। उसका शरीर कैसा बलिष्ठ था ! हमारे बहुत से युवकों का शरीर दुर्बल होता है। शारीरिक कमज़ोरी पुरुषत्व हीनता का लक्षण है। बलवान ही कुछ कर

सकते हैं। अपने शरीर बनाओ मैं यह युवकों से कहता हूँ।

शरीर-निर्माण का आधार ब्रह्मचर्य्य है। भोग ने बहुत से युवकों को नष्ट कर दिया है।

इन्द्रियों को अपने वश में रखना बुद्धिमत्ता है। दयानन्द अपने गुरु बिरजानन्द के समान बाल-ब्रह्मचारी था। आज कल नव युवक विषय भोग में मग्न रहते हैं। आमोद-प्रमोदों की दौड़ में उनका शरीर क्षीण और रोग ग्रस्त हो जाता है। लन्दन के किङ्ग कालेज में भाषण देते हुए प्रसिद्ध जर्राह सर आर्थर केथ ने कहा था "नेत्रों की ज्योति के कम होने का प्रधान कारण नेत्रों से अधिक काम लेना नहीं वरन् भोजन में न्यूनता (त्रुटि) है।" हमारे शरीर वर्तमान सभ्यता के कारण नवीन दशाओं में ग्रसित हो गये हैं। हमारे वर्तमान खाद्य पदार्थों से हमारी पाचन शक्तियों का ह्रास हो रहा है। रोगों से दाँत टूट रहे हैं। हमारा स्नायु-मण्डल (Nervous system) बिगड़ता जा रहा है। तालु-सङ्कोचन तो साधारण बात है।

भोग का अर्थ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दौर्बल्य होता है। भारतवर्ष को आज शक्ति के सन्देश की ज़रूरत है। सामर्थ्य अमेरिका वालों का मूल मंत्र है।

भारतवासियों का मूल मंत्र भी शक्ति होना चाहिये। बलवान पुरुष और स्त्रियां ही भारत को स्वाधीन करा सकेंगे। इसीलिये मैं युवाओं को मज़बूत शरीर बनाने के लिये प्रेरणा करता हूँ। बल-वर्द्धक खेलों में रुचि बढ़ाना ज़रूरी है। यूनान के नवयुवक व्यायाम शील हुआ करते थे। जापान वाले शिक्षा के बड़े प्रेमी हैं। जापान के हरेक गांव में पाठशाला है। ९० प्रति सैकड़ा मनुष्य 3 Rs' (Reading, Writing and

Arithmetic) पढ़ना, लिखना और हिसाब जानते हैं। इतना होने पर भी जापान केवल शिक्षित राष्ट्र कहलाये जाने में सन्तुष्ट नहीं। जापान शक्ति-शाली राष्ट्र बनना चाहता है। जापान का विश्वास मनुष्य बनाने वाली शिक्षा में है। वहां के नव युवकों को जिमनास्टिक, फौजी ड्रील, तैरना, खाली निशाना मारना, पर्वतारोहण, वेष बदल कर युद्ध करना प्रभृति खेल सिखलाये जाते हैं। जापान के विद्यार्थी सैनिकों का वेष भी धारण करने के लिये बाधित किये जाते हैं। हथियार चलाना भीं उन्हें सिखलाया जाता है। वर्ष में एक बार उन्हें रात्रि भर यात्रा करने के लिये बुलाया जाता है।

"हमारे शरीर सहन शील होने चाहियें।" यह फिन्लैंड के नव युवकों का मूल मंत्र है। सब से बढ़िया खेल खेलने वालों को राज्य-कर से मुक्त कर दिया जाता है। शीत काल में छोटे छोटे बालक और बालिकाएं कई कई मील तक पैदल चलने के लिये प्रोत्साहित किये जाते हैं। पुरुषत्व सम्बन्धी सभ्यता के दो चिन्ह होते हैं। पहला बल-वर्द्धक खेलों का खेलना और दूसरा कर्म्म वीरों का सत्कार करना। जापान का उद्देश्य हमेशा बल बढ़ाने का रहा है। वीरों के प्रति जापानियों के हृदय-मन्दिरों में असीम प्रेम रहता है। जापान में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के ये दो मुख्य अङ्ग है—जापानियों में व्यायामशीलता के भाव सुन्दर हैं और चीनियों में इसका अभाव होने से इसमें चार चाँद लग गए हैं। इटली में संयुक्त राज्य अमेरिका के राजदूत मि- आर-डबल्यू-चाइल्ड ने कहा था "आप लोग भले ही जापानियों के सम्बन्ध में कुछ विचार रक्खें परन्तु ३००० वर्ग मील वाले व्यास के वृत्त से घिरा हुआ केवल एक यही राष्ट्र है जो अपना शासन

स्वयं करता है। न कभी वे पादाक्रान्त हुए और न उन पर कभी विदेशीय शासन रहा और न कभी उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि को तोड़ा। एक अद्वितीय खेल के द्वारा शताब्दियों तक उन्हें आत्म-संयम और बलिदान की कला का प्रशस्त पाठ पढ़ाया जाता रहा। इस खेल में उन्होंने सीखा कि व्यर्थ तलवार मत खींचो परन्तु खींच लेने पर मरने वा मारने के लिये तैयार हो जाओ।,, जापानियों के सम्बन्ध में ये बातें सत्य हैं। जापान खेल पसन्द देश है। सैकड़ों वर्षों से चीन वालों पर विदेशियों का आधिपत्य हो रहा है। ये ही लोग इन पर शासन करते रहे हैं। इने गिने लुटेरों के कारण चालीस करोड़ पुरुष और स्त्रियां दुःख पा रहे हैं। तुम चीन वालों को पुरुषत्व बढ़ाने वाले खेल खेलते हुए नहीं देखोगे। बल-बर्द्धक खेलों का तो उन्हें ज्ञान तक नहीं। बल-बर्द्धक खेलों और वीरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की हम भारतीयों ने बड़ी अवहेलना की है। भारतवर्ष के स्कूलों और कालिजों में इन दोनों बातों पर विशेष ज़ोर दिया जाना चाहिये। वर्तमान शिक्षा का अधिक भाग कुशिक्षा है। शिक्षा का काम चरित्र बनाना है। बिना शक्ति के चरित्र कहां? यह शिक्षा तो अनुकरण मात्र है। इसीलिये मनुष्य बनाने वाली नहीं है। मेरा विश्वास है कि दयानन्द ने आर्य संस्कृति का पोषण करते हुए चरित्र गठन के महत्त्व पूर्ण प्रश्न को अपने सामने रक्खा था। भारतवर्ष के हरेक शिक्षणालय में रामायण और महाभारत की शिक्षा अकारण ही नहीं दी जाती थी। इन में शक्ति का सन्देश मौजूद है। राम और कृष्ण की शिक्षा केवल पुस्तकों पर अवलम्बित नहीं थी। परन्तु धर्म द्वारा इसका महत्त्व बढ़ाया गया था। उन्हें लिखने पढ़ने की शिक्षा ही नहीं वरन् शरीर में, मष्तिष्क में और चरित्र में

बलवान बनने की शिक्षा भी दी जाती थी। क्षात्र तेज का परित्याग नहीं किया गया था बल्कि धर्म्म द्वारा उसका महत्त्व बढ़ाया गया था।

जब किसी देश की सभ्यता पौरुषोत्पादक नहीं रहती तब ही उस देश का नाश हो जाता है। वर्तमान युवकों के लिये मुख्य मन्त्र है—शक्ति।

मेरी मातृ भूमि

दयानन्द ने भारतवर्ष को पतितावस्था में पाया। उसे साथ ही इस अवस्था में पड़े हुए भारतवर्ष में उज्ज्वल भविष्य के चिन्ह भी दिखलाई दिये। अपने देश के भविष्य में उसका आश्चर्य पूर्ण विश्वास था। अपनी जाति के भविष्य में उसका विश्वास आश्चर्य जनक था। आर्य्य आदर्श देश को वही शक्ति प्रदान कर सकता था जिसकी उसे ज़रूरत थी। इसी विश्वास में दयानन्द का देश प्रेम केन्द्रित था। हिंदू जाति की दृढ़ता इतिहास की आश्चर्यमयी घटनाओं में से एक घटना है। केवल यही जाति ऐसी है जो अनेक परीक्षणों और आपत्तियों का सामना कर चुकने के बाद अबतक जीवित है। आक्रमणों के तूफ़ानों ने बारम्बार इसे उड़ाया, यह झुक जाती थी परन्तु टूटती न थी। शताब्दियों के राजनैतिक परिवर्तनों के होते हुए भी हिंदू लोग एक दूसरे से समष्टि रूप से अलग नहीं हुए हाँ आगे न बढ़ सके। इसका फल यह हुआ कि उन्होंने ऐसी भयंकर प्रथाओं की शरण ले ली जिनमें और आदर्श हिन्दुत्व की समस्त फिलासफी में ज़मीन आसमान का फ़र्क था।

हे हिंदू जाति! तू भयंकर और शक्तिहीन करने वाली कुप्रथाओं का परित्याग कर, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वाधीनता के प्राङ्गण में प्रवेश कर! मेरे विचार में इसी सन्देश पर आजकल ज़ोर देने की ज़रूरत है। भारतवर्ष भविष्य को देखता है इसके लिये उसको अपने भूतकाल को समझना अत्यावश्यक है। हिंदुओं को अवश्य ही जातीय शक्ति को पुनः प्राप्त करना चाहिये।

दयानन्द आर्य्य जाति को बलवान जाति देखने का इच्छुक था। इस जाति को, अवश्य ही ऐसा बनने के लिये अपने भूत काल की ओर दृष्टि फेरनी होगी। इसकी महत्ता का निर्माण इसी की परम्परागत श्रेष्ठ मर्यादाओं पर होगा। उस राष्ट्र का अभ्युत्थान कभी नहीं हो सकता जिसके हृदय में अपने पूर्वजों, ऋषियों और वीरों के प्रति प्रेम न हो।

वर्तमान शिक्षा उतना ही हमें कमजोर करती है जितना यह परम्परागत मर्यादाओं का तिरस्कार करती है। यह हमारे स्कूलों और कालिजों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के हृदयों में भारत के वीरों के प्रति प्रेम उत्पन्न नहीं करती।

कितने विद्यार्थियों ने महाराणा प्रताप के जीवन का मनन किया है? उस राजपूत वीर की कहानी इतिहास की रोमांचकारी कहानियों में से सब से अधिक रोमांचकारी कहानी है। यह कहानी उस मनुष्य की है जिसकी इच्छा शक्ति बड़ी दृढ़ थी और जिसकी शक्ति अगाध थी। चित्तौर का यह राजकुमार भूखों रहा, पृथ्वी पर बिना बिछौने सोया और अपनी स्त्री तथा सुकुमार बच्चों को अवर्णनीय कष्टोंका सामना करते देखा परन्तु शत्रु की अधीनता स्वीकार न की।

चित्तौर को देखना वीरों के ऊपर आंसू बहाना है। चित्तौर राजपूत वंश के वीरों की सहृदयता और वीरता की आज भी याद दिला रहा है। तौ भी वैनकवर्न के युद्ध का राग अलापने वाले हमारे भारतीय ग्रेजुएटों में से कितनों को चित्तौर के इस वीर की कहानी से रोमांच हुआ है?

दयानन्द को मैं आधुनिक भारतवर्ष की आध्यात्मिक जातीयता के धर्मोपदेष्टाओं में से सबसे पहला धर्म्माचार्य्य मानता हूँ

क्या "आर्य्य समाज" शब्द राष्ट्रीयता का द्योतक नहीं है ? भारत के राजनैतिक नेता राष्ट्रीय कांग्रेस को राष्ट्रीय नाम कब देंगे ?

दयानन्द ने देश के इस छोर से उस छोर तक आर्य्य संस्कृति और सभ्यता के महान् सन्देश की घोषणा की। राष्ट्र के हित के लिये दयानन्द के समस्त सन्देश बहु मूल्य हैं। भारतवासियों को प्रजातन्त्र के आदर्शों से अनभिज्ञ बताने वालों को भारत के इतिहास का ठीक ठीक परिज्ञान नहीं। आज हम स्वराज्य की चर्चा करते हैं। स्वराज्य शब्द वैदिक शब्द है। वेद के एक मन्त्र में उन गुणों का विधान है जिनका स्वराज्य पूजा में प्रवृत्त होने के लिये हमें विकास करना चाहिये। निर्वाचन के सिद्धान्त का भी वेद मन्त्रों में उल्लेख है। हमने पढ़ा :"हे राजन्! जनता राज पद के लिये तुझे चुनती है"। एक दूसरे मन्त्र में जो नव-निर्वाचित राजा के प्रति सम्बोधित किया गया है, लिखा है "राजन्! अपनी समस्त प्रजा की शुभ कामनाओं को प्राप्त करने और इस बात के देखने के लिये कि तुम्हारे राज्य का नाश तो नहीं हो रहा, दृढ़ता पूर्वक खड़े रहो।

ऐसे बहुत से मन्त्र हैं जिनमें देशानुराग की पवित्र भावनाएं मौजूद हैं। ऋग्वेद में आता है "जननी जन्मभूमि स्वर्गादपि गरीयसी"। अथर्ववेद में लिखा है कि "मातृभूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं"। "मैं मातृ भूमि को प्रणाम करता हूं।" स्वराज्य की चर्चा करने वालों को चाहिये कि वे प्राचीन राजनीति का मनन करें। भारत वर्ष सचमुच महान् नहीं बन सकता, यदि वह इंग्लैण्ड का अनुकरण करने लग जाय।

हमारे स्वराज्य की निर्माण व्यवस्था (Constitution) पाश्चात्य देशों का अनुकरण नहीं होना चाहिये। हमारे स्वराज्य की आधार शिला भारत की प्रतिभा और आदर्श होने चाहियें। हमें पाश्चात्य अनुभवों का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिये परन्तु अपने नवीन राष्ट्रीय जीवन से सम्पर्क रखने तथा आकर्षण करने वाली शक्तियों को हमें अपने आप में ढूंढना चाहिये।

यजुर्वेद में हम पढ़ते हैं :-"तेरा शरीर और मस्तिष्क बलवान हो।" तरुण भारत को शक्ति के सन्देश की आवश्यकता है। यह शक्ति यज्ञ की नाईं प्रज्वलित होनी चाहिये। यज्ञ, हवन अत्यन्त उपयोगी होते हैं। विवाह से लेकर दाह कर्म्म संस्कार तक अग्नि हमारा साक्षी रहता है।

दयानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ। दयानन्द को मैं अपने इतिहास के नायकों में से एक नायक मानता हूँ जिसने हम तक यज्ञ-मय शक्ति का सन्देश पहुँचाया है।

भारतवर्ष उस दिन महान् था जिस दिन यह आत्मिक जीवन में बलवान था। आज भारत वर्ष धूल में पड़ा हुआ है। इसके बच्चों ने ऋषियों के बहुमूल्य मोतियों के बदले उस संस्कृति के जो लोभ और भोग की उपासक है कुछ अल्प मूल्य वाली भड़कीली वस्तुएं लेली हैं। इस लिये नव युवकों! तुम्हारे प्रति मेरा यही सन्देश है कि तुम अग्नि शिखा की नाईं सादे और बलवान बनो। तुम्हें शताब्दियाँ घेरे हुए हैं, मुर्दा नहीं प्रत्युत सोती हुईं। ये शताब्दियाँ अपने ज्ञानगीतों के साथ तुम्हारे शक्ति स्पर्श से जागेंगी

मृग तृष्णा से क्लान्त हुए भारत के नव युवकों ! वे तुम्हें बतलायेंगी कि तुम्हारी स्वाधीनता अनुकरण में नहीं वरन् शक्ति में है। पार्लियामेन्ट के पत्रों में नहीं बल्कि अन्तरात्मा में है।

ब्रह्मचर्य्य, निर्धनों और अनाथों की सेवा सत्य एवं प्रेम की तपस्या द्वारा इसे दृढ़ करो।

इस शक्ति से "महान् आर्य्यावर्त,, का जन्म होगा।

महान भविष्य का प्रदीप

संसार में क्या त्रुटि है? अविद्या। एक प्रकार के ज्ञान की खोज की जा रही है परन्तु इसका बहुत सा भाग मुर्दा ज्ञान है। विद्या मुर्दा ज्ञान नहीं! विद्या जीवन के आध्यात्मिक केन्द्र के लिये खोज होती है।

साधनों के बिना खोज कहां? अध्ययन स्वयं एक साधन है। परन्तु यह अपूर्ण है। इसे सफल बनाने के लिये अन्य साधनों की ज़रूरत होती है। अध्ययन के अलावा जिन तीन साधनों को प्राचीन गुरुकुलों और आश्रमों के विद्यार्थी काम में लाते थे वे ब्रह्मचर्य्य, परिश्रम और उपासना थे।

वह ज्ञान जो बुद्धिमत्ता में परिणत होता है किताबों के रटने से नहीं मिलता। आत्मा का शिक्षण जिससे होता है, उसे विद्या कहते हैं। यह शिक्षण शरीर और मष्तिष्क के ब्रह्मचर्य्य के बिना सम्भव नहीं। बिना कारण के ही हमें यह नहीं बतलाया गया है कि सरस्वती का बिवाह शाश्वत ब्रह्मचारी से हुआ है।

पाश्चात्य देशों के नवयुवकों के आन्दोलनों में ब्रह्मचर्य्य के सत्य की अवहेलना की जा रही है। प्राचीन काल में विद्यार्थी-जीवन की श्रेष्ठता ब्रह्मचर्य्य समझा जाता था। तथा शरीर और मष्तिष्क को नियन्त्रण में रखना विचारों और इच्छाओं को पवित्र बनाये रखना, मुख्य उद्देश्य समझा जाता था। सादा जीवन पवित्र होता है। आमोद प्रमोद ही इस जीवन को निकृष्ट बना देते हैं। दुसरा साधन परिश्रम वा हाथ का

काम है। हमने पुस्तकों में पढ़ा है कि विद्यार्थी अपने गुरू के लिये पानी भरते, ईंधन लाते और पशुओं का पालन भी किया करते थे। इस रीति से सेवाश्रमों में विद्याध्ययन होता था। प्राचीन भारत के शिक्षणालयों में सदाचार और परिश्रम एक साथ हाथ बंटाते थे।

इसके बाद दैनिक उपासना का साधन है। अध्ययन, ब्रह्मचर्य्य, परिश्रम और उपासना ने प्राचीन भारत में गुरु-गृह को पुण्य तीर्थ बना दिया था।

मैंने बहुधा इस बात पर विचार किया है कि यदि हम ४ प्रकार के काम पर ध्यान दें तो स्वराज्य की प्राप्ति शीघ्र ही हो जावे। वह चार प्रकार का काम शिक्षा, स्वास्थ्य शास्त्र, स्वदेशी और कृषि है। यह कार्य हमारे जन-समुदाय की उन्नति के लिये परमावश्यक है।

प्राचीन भारत में विद्वान और प्रचारक स्थान स्थान पर जाते और जनता में शास्त्रों की शिक्षा का प्रचार करते थे। वे लोग जनता के सामने महात्माओं के जीवनों को भी पढ़कर सुनाते। उस समय सर्व्व-साधारण की शिक्षा में वास्तविकता थी। आजकल युरोप में सर्व साधारण की शिक्षा के महत्व को लोग समझने लगे हैं। वहाँ पर सर्व-साधारण के लिये पुस्तकालय, वाचनालय, लैक्चर हाल मौजूद हैं। वहां के लोग हमारे देश के सर्व-साधारण की अपेक्षा वर्तमान जीवन का अधिक आदर करते हैं। पाश्चात्य देशों के मोची हमारे देश के मध्यम श्रेणी के लोगों में से बहुतों की अपेक्षा राजनीति में अधिक दिलचस्पी लेते हैं।

हमारे सर्व साधारण तो अफवाहों और पुजारियों के गुलाम बने हुए हैं। हमारा परिश्रम सुव्यवस्थित। नहीं हमारे किसान अभीतक कृषि-सम्बन्धी शान्ति में निवास कर रहे हैं। उन्हें पता भी नहीं कि संसार में क्या क्या मौलिक परिवर्तन हो रहे हैं। पश्चिम के बहुत से देशों में प्रायः सर्व साधारण शिक्षित हैं। कई वर्ष हुए मैंने ब्रिस्टल में श्रम जीवी कान्फ्रेन्स में भाषण दिया था। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ था कि बहुत से श्रम जीवी-संघ भारतीय समस्या में दिलचस्पी रखते हैं।

किसानों और श्रम जीवियों के स्कूलों की उपयोगिता के सम्बन्ध में कोई अत्युक्ति से काम नहीं ले सकता। भविष्य सर्व्व-साधारण के हाथ होता है। हम देखते हैं कि योग्य-नेतृत्व में सर्व्व-साधारण क्या नहीं कर सकते ? हम कमाल की विजय की चर्चा करते हैं, परन्तु हम भूल जाते हैं "कमाल" का कमाल अंगोरा के किसानों की वजह से है। नवीन रूस पर वहां के मजदूरों का ऋण है। रूस के कृषकों और मज़दूरों के लिये हज़ारों की संख्या में स्कूल और पुस्तकालय खोल दिये गये हैं। क्रान्ति के बाद से अब तक लगभग ४ करोड़ रूसी लिखना, पढ़ना सीख चुके हैं। हर जगह भविष्य सर्व्व-साधारण के हाथ होना है, इसी लिये मैं कहता हूँ कि सर्व्व-साधारण को शिक्षित बनाओ।

मैं स्कूलों की दीवारों पर भारत माता, भारत के ऋषियों कवियों, वीरों, शहीदों, धर्म्माचार्य्यों और देश भक्तों के चित्र लगे देखना चाहता हूँ क्योंकि प्रत्येक चित्र एक शिक्षक का काम देता है। प्रत्येक चित्र ठीक रीति से एक पाठ हमारे सामने रखता है। मैं यह चाहता हूँ कि हमारे जन—

समुदाय रामायण और महाभारत का पाठ करें। इन प्राचीन ग्रन्थों में आश्चर्य्य पूर्ण बातें भरी हैं। महाभारत को पढ़ो तो पता लगेगा कि पन्ने पन्ने पर कैसी सुन्दर सुन्दर कहावतें और उपदेश दिये गये हैं। "बेईमानी नर्क का द्वार है" अपने बच्चों को इसका पाठ कराओ। निश्चय ही वे लोग दफ्तरों या दुकानों में ईमान्दार सिद्ध होंगे। "सत्य परमात्मा का स्वरुप है।" अहा ! यह कैसो सुन्दर कहावत है। मित्रता समान में निभ सकती है" स्वराज्य की तमाम फिलासफी इस सारगर्भित कहावत में केन्द्रित है। यदि इंगलिस्तान और हिन्दुस्तान मित्र भाव से रहें तो आवश्यक है कि हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो। "प्रेम हमारा शास्त्र है,,। भारतवर्ष अपने इतिहास के बड़े युगों में प्रेम के आदर्शवादका साक्षी रह चुका है। मुझे प्रत्येक स्कूल के विद्यार्थी को इस सन्देश के देने में प्रसन्नता होनी है, "प्रेम हमारा शास्त्र है" प्रेम का यह सन्देश भारतवर्ष के ऋषियों और महर्षियों के हृदयों को खोल कर हमारे सामने रखता है। प्रेम करना व्यापार करना नहीं। प्रेम करना धनसञ्चय करना नहीं। प्रेम करना चंगुल में फंसाना नहीं। परन्तु प्रेम का सदुपयोग करो। जब भगवान बुद्ध बनाश्रम से निकल कर संसार के लोगों के दुःख निवारण के कार्य्य का आरम्भ करते हैं अकस्मात ही उनकी अपने माता-पिता से राजप्रासाद में भेंट हो जाती है और वे दोनों अपने राज कुमार को साधु-वेष में कमण्डलु लिये देखते हैं तो बड़े दुखी हो जाते हैं और पूछते हैं "राजकुमार ! तुम राज्यैश्वर्य्य को छोड़ कर भीख मांगते क्यों फिर रहे हो ?" बुद्ध भगवान क्या ही सुन्दर उत्तर देते हैं "पूज्य माता-पिता जी ! मैं अपनी जाति की रीति पर चल रहा हूँ।" अहा ! हमारे ऋषियों और महर्षियों, कवियों

और आचार्य्यों की त्याग की रीति रही है। दयानन्द त्यागी था। जिन्हें त्याग की शिक्षा मिल चुकी है, वे ही नवीन युगों के निर्माता बनते हैं। भारतवर्ष में पुनरुज्जीवन के बहुमूल्य बीज कौन बोयेंगे ? धनाभिमानी नहीं, पदाभिमानी नहीं, वरन् तपस्वी और विद्वान लोग। ये लोग जन-समुदाय को सहयोग देंगे और भारत की सेवा और स्वाधीनता के लिये उन्हें शिक्षित बनायेंगे। हमारे स्कूल और कालेज आर्य्यावर्त्त के सादे आध्यात्मिक वातावरण में घूमें। इसी में हमारी आशा है और इसी के द्वारा राष्ट्रों का कल्याण होगा।

प्राचीन ज्ञान भविष्य के लिये एक सन्देश लाता है। प्रकृति की निस्तब्धता में, वर्तमान अहम्भाव से रहित अध्यात्मवाद और सादगी से सुवासित वनाश्रमों में, अपरिमित जीवन के भ्रातृसंघ में और इतिहास के प्रभात में आर्य्य संस्कृति का जन्म हुआ था। इससे कहीं दूर, यह संस्कृति नागरिकता की पोषक वर्तमान सभ्यता में परिवर्तित हो गई। हम भ्रातृत्व और जीवन के स्वाभाविक आनन्द को खो बैठे। भोग, आत्म तृप्ति और निर्बलों पर अत्याचार करने के लिये सभ्यता (Civilization) एक चिकना-चुपड़ा शब्द बन गया ! हम इस सभ्यता का अन्त जानते हैं। गड़बड़ो ! संसार की आशा आत्मिक ज्ञान में है। वैदिक ज्ञान में है। परमात्मा करे हमारे देश में ऐसे बहुत से नव युवक हों जिन के पवित्र हृदयों में महान् भविष्य के प्रदीप को लेने की बलवती इच्छा विद्यमान हो।
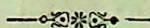
तरुण भारत को सन्देश

गत रात्रि को एक उत्साही युवक ने मुझ से कहा कि "मैंने दयानन्द की संक्षिप्त जीवनी पढ़ी जिस में यही पाया कि वह इस स्थान से उस स्थान को वैदिक शास्त्रार्थ के लिये गया। मैं चक्कर में पड़ गया। उनका भारत के युवकों के लिये क्या सन्देश है ?"

दयानन्द की जीवनी अब भी लिखी जानी शेष है। दयानन्द की जीवनी "वैदिक शास्त्रार्थों" से कहीं अधिक बहुमूल्य है। कार्लायल किसी जगह लिखता है कि एक सुन्दर चित्र पहिली बार देखने पर तुच्छ मालूम पड़ सकता है परन्तु ज्यों ज्यों हम उस पर दृष्टि जमाते हैं उसके सौन्दर्य का हमें अनुभव होता जाता है। दयानन्द की जीवनी एक ऐसा ही चित्र है। यह मुझ पर प्रगट होती गयी है ज्यों २ मैंने उसे देखा और देखना जारी रक्खा है।

दयानन्द मनुष्य जाति का प्रेमी था। परन्तु उसका मनुष्य प्रेम केवल (अपनी जाति को) पृथक करना नहीं है। उसका सन्देश आर्य जाति की भावना और भारत की राष्ट्रीयता से प्रोत्साहित हो रहा है। उसके हृदय में प्राचीन वैदिक मंत्र की भावना गूंज रही है:—मातृ भाषा 'जातीय सभ्यता' और 'मातृ भूमि' यह तीन कल्याण के स्रोत हैं, 'इन्हीं को अपने हृदय में बैठाओ। कितने लोग जानते हैं कि दयानन्द ने उन बड़े प्रसिद्ध देशभक्त-दादा भाई नौरोजी और लोकमान्य तिलक से भी पूर्व 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया था। दयानन्द ने अपने बनाये आर्य समाज का प्रजातन्त्रात्मक संगठन रक्खा। उनके राजनैतिक भाव प्रजातन्त्र भावों से भरे हुये हैं। यजुर्वेद के १६ वे अध्याय

के २४ वें मंत्र पर टीका करते हुये वे लिखते हैं 'मनुष्यों को सदा ध्यान रखना चाहिये कि उनके देश का शासन एक व्यक्ति के द्वारा नहीं प्रत्युत कौंसिल के द्वारा होता है। सत्यार्थ प्रकाश के एक सारगर्भित वाक्य में इस आर्य्य विचार को विस्तार से लिखते हैं "राजा मनुष्यों का रक्षक है' वे लिखते हैं—कोई कितना ही करे पर जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मत मतान्तर के आग्रह रहित पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है। "क्या यह शब्द जो ऋषि ने १८८२ ई० में लिखे हमारी स्वराज्य फिलासफी के असली तत्व को प्रगट नहीं करते हैं? स्वराज्य उत्तम राज्य से बढ़ कर है। दयानन्द ने भारत पतन के कारणों का भी विश्लेषण किया है। एक सुन्दर वाक्य में जिसमें बहुत सा ऐतिहासिक ज्ञान भरा हुआ है वे लिखते हैं:—

'स्वायम्भव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का सार्व-भौम राज्य रहा तत्पश्चात परस्पर के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये'

फिर वे लिखते हैं:—

'जब भाईभाई परस्पर लड़ते हैं तो एक विदेशी पंच बन बैठता है पारस्परिक फूट से भूतकाल में पाण्डव कौरव और यादवों का नाश हो गया, और यह बीमारी अब तक हमें नहीं छोड़ती'

फूट की बीमारी को दयानन्द बारम्बार भयानक कह कर घृणित बतलाता है। उसे वह 'दुर्योधन का पाप' और हमारे सारे सुख को अपहरण करने वाली और हमें दुख सागर में डुबाने वाली बतलाता है। दयानन्द अपने देश वासियों के दोष छिपाता नहीं। क्यों अंग्रेज़ हम पर राज्य करते हैं? दयानन्द

इस प्रश्न के उत्तर में अंग्रेज़ों की देश भक्ति, आत्मसमर्पण उनकी शिक्षा और उत्तम सामाजिक रीतियों की ओर ध्यान दिलाता है। दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैः—

युरोपियनों में वाल विवाह न करना, लड़का लड़की को सुशिक्षित करना कराना, स्वयंवर विवाह होना। बुरे बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता। वे विद्वान हो कर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते। जो कुछ करते हैं परस्पर विचार और सभा में निश्चित करके करते हैं। अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन, मन, धन, व्यय करते हैं। देखो अपने देश के वने हुए जूते को कचहरी में जाने देते हैं............. आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहनते हैं जैसे कि अपने देश में पहनते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा परन्तु तुममें से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं ....इत्यादि गुणों और अच्छे २ कर्मों से उनकी उन्नति है।„

एक दूसरे सारगर्भित वाक्य में ऋषि इस देश में विदेशी राज्य के निम्न कारण वतलाते हैं। (१) पारस्परिक फूट, बाल विवाह, विनास्वयंबर के विवाह, इन्द्रियों का विषय भोग, असत्य व्यवहार, पापाचरण, वेदाध्ययन का त्याग और दूसरे दुष्कर्म। ऋगवेद के एक मंत्र की व्याख्या करते हुए ऋषि लिखते हैः।—

जब मनुष्य आत्मसम्मान युक्त न्यायपरायण और सच्चे होते हैं तभी वे राज्यैश्वर्य्य को भोग सकते हैं जब वे दुष्ट और अन्यायी हो जाते हैं तव उनका सर्वनाश होजाता है।

यही बात २००० से अधिक वर्ष हुये पहिले यहूदी पैग़म्बर

ने कही थी "सदाचार किसी जाति को उच्च बनाता है"। परन्तु इस सुन्दर बाइबिल की शिक्षा को ईसाई जातियों ने पैरों तले कुचल डाला है और तीन शताब्दियों से युरोप ऐसे जातीय भावों से सताया हुआ है जिसमें सच्ची आर्य भावना का बपतिस्मा नहीं लगा है जिसके अनुसार एक ईश्वर एक मनुष्य जाति और पारस्परिक सेवा का नियम ही आदर्श है।

भारत के लेखकों में दयानन्द ही पहिला था जिसने आर्य भाषा को राष्ट्रीय भाषा बनाने का बीड़ा उठाया। भारतीय परम्परागत बातों और आदर्शों का सब से अधिक प्रोत्साहन किसके भीतर हुआ? उसने भारतीय परिस्थिति को देखा। उसने पतन की अवस्था को समझा। उसने पुनरुज्जीवन की नयी भावना की आवश्यकता का अनुभव किया। उसने समझ लिया कि भारतवर्ष 'आत्मसंरक्षण' के नियम को भङ्ग करने के कारण पतित हुआ है। उसने अनुभव किया कि जाति की आवश्यकता यह है कि उसे एक ज़ोरदार जीवन की-प्रगाढ जीवन की-तीव्र प्रेरणा मिले। और यह जीवन प्रेरणा आर्य आदर्श के नये ज्ञान और नये बोध से ही प्राप्त हो सकती थी। उसका विश्वास था कि भारत अपने जातीय आदर्शों को प्रगट किये विना कदापि महान् नही बन सकता। आर्य धर्म के नूतन परिज्ञान और उसके लिये नूतन प्रेम के द्वारा नव भारत का जन्म होगा!

इसी लिये उसकी अभिलाषा थी कि भारत के बहुत से सुधारकों और धार्मिक सस्थाओं को जाति की सेवा के लिये एक समान "वेदी" पर लाया जा सके। कदाचित् अर्वाचीन भारत का सबसे पहिला ऐक्य सम्मेलन (Unity Conference)

वही था जिसे दयानन्द ने अब से आधी शताब्दी पूर्व बुलाया था। वह कान्फ्रेन्स निष्फल हुई जैसे कि हमारे देश में और बहुत उपयोगी प्रयत्न निष्फल हुये हैं। परन्तु दयानन्द की असहिष्णुता (Intolerance) का कहना इस बात को भुला देना है कि उसने एक से अधिक बार वास्तविक ऐक्य सम्मेलन का प्रयत्न किया। उस सम्मेलन की अर्वाचीन भारत के रहस्य-पूर्ण विचारक श्रीकेशवचन्द्र सेन ने भी बढ़ाई की थी। इंण्डियन मिरर (Indian Mirror) पत्र में जो केशव के प्रभाव में था। १८७७ ई० में लिखा था "यदि वह कान्फ्रेंस जो पण्डित दयानन्द के निवासस्थान पर वर्तमान संशोधकों में एकता उत्पन्न करने के लिये बुलाई गई है व्यवहारिक और वास्तविक आधार पर एकता स्थापित कर सकी तो इस में सन्देह नहीं कि इसका बहुत शुभ परिणाम होगा"। दयानन्द "एकता" चाहता था और उसके लिये उसने प्रयत्न किया। ऋगवेद में "शान्ति-पूर्वक मिलने और व्यवस्था पूर्वक सहयोग करने "प्रेम और सहानुभूति के भावों के साथ विचार करने„ विचारों को सुनियम मार्ग में चलाने" और "हृदय को एक दूसरे के साथ प्रेम में रखने तथा बुद्धि को सबकी भलाई में लगाने„ का आदेश है। पारस्परिक सहायता और पारस्परिक भलाई„ का सिद्धान्त अनेक वेद-मंत्रों में बतलाया गया है।

मेरा विचार है कि फूट की जड़ में निर्बलता और शक्ति का अभाव है। शक्ति से ही ऐक्य और स्वाधीनता प्राप्त होगी। "शक्ति" के सन्देश की नये भारत को ज़रुरत है और दयानन्द ने अपने जीवन में और अपनी शिक्षा में 'शक्ति के सन्देश में अपना गहरा विश्वास प्रगट किया है। मैं जिस शक्ति का समर्थन करता हूं वह सर्वतोमुखी है—अर्थात् शरीर मन और आत्मा

की शक्ति में जाति के युवकों को दयानन्द की जीवनी पढ़ने को कहता हूं इसमें एक कारण है। वह एक शक्ति शाली मनुष्य था वह कोपीन धारण करने वाला स्वामी शरीर में बलवान था। वह अपने वेद भाष्य में लिखते हैं कि ईश्वर के सेवकों को समझलेना चाहिये कि उन्हें शारीरिक शक्ति बढ़ाना आवश्यक है। शरीर और आत्मा दोनों की शक्ति बढ़नी चाहिये। वे सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि यदि केवल मानसिक शक्ति और विद्या की ही वृद्धि की जावे और शरीर की न कीजावे तो एक शारीरिक शक्ति वाला मनुष्य सैकड़ों विद्वानों को पराजित कर सकता है। इसलिये शरीर और मन दोनों का विकाश होना चाहिये। मेरा विश्वास है कि शरीर को बनाना, चरित्र को बनाना और जाति को बनाना है। मैं शारीरिक शिक्षा का आध्यात्मिक मूल्य समझता हूं। उन पुरुषों से जो जातीय सेवा के लिये उत्सुक हैं, मैं कहता हूं–"अपना शरीर बनाओ"। दयानन्द की शारीरिक शक्ति के विषय में बहुत कथायें हैं। वह बनारस जा रहा है। वर्षा के कारण सड़कों पर कीचड़ है। एक गाड़ी कीचड़ में फंस गई हैं। गाड़ीवान गाड़ी को ऊपर खीचने में असमर्थ हो निर्दयता पूर्वक बैलों को मार रहा है। दयानन्द उन गरीब जानवरों को बचाने जाता है। गाड़ीवान से बैलों को मारने को मने करता है और उनके जुए को हटाकर गाड़ी को कीचड़ से बाहर निकाल देता है। एक दूसरे अवसर पर वह एक गाड़ी को जिसमें घोड़ा जुना हुआ है पीछे से रोक देता है। घोड़ा आगे नहीं चल सकता। निस्सन्देह अर्वाचीन भारत का यह ऋषि एक 'पहलवान' था। सच्ची आध्यात्मिकता कोमल भावुकता का नाम नहीं है।

यह भारत का आध्यात्मिक पहलवान यह शक्तिशाली

मनुष्य निर्भय था। एक जगह वह लिखते हैं मुझे सिवाय 'परमात्मा' के किसी का भय नहीं। दयानन्द गंगा में स्नान कर रहे हैं कि एक मगर उनके पास आ जाता है। एक आदमी 'मगर' 'मगर' चिल्ला उठता है। दयानन्द को कुछ भय या घबराहट नहीं होती और शान्ति पूर्वक कहते हैं "जब मैं इसे हानि नहीं पहुंचाना चाहता तो यह भी मुझे न पहुंचायेगा।,, कुछ बदमाश लोग ऋषि पर और उनके साथियों पर एक शास्त्रार्थ के समय आक्रमण करते हैं। वह अपने निवास स्थान को लौट आते हैं। बदमाश निवास स्थान पर आक्रमण करते हैं उनका लेखक उनको शान्त करने के लिये बाहर आता है। वे उसे पीटते हैं। दयानन्द को इसका पता लगता है। और वे तत्काल लेखक का बचाने पहुंचते हैं। अपने हाथ में एक छड़ी लेकर वह बदमाशों को डाटता है। वे इस शक्ति के मनुष्य को नहीं जीत सकते और वे तेज़ी से भाग जाते हैं।

वह बात को तोड़ मरोड़ कर नहीं कहता। विरोधियों की भीड़ में भी वह सत्य को उसी प्रकार प्रगट करता है जैसा कि उसे प्रतीत होता है। वह सत्य को बलवानों के मुखपर कहता है। एक सभा में जहां एक देशी राजा बैठे हुए थे भाषण करते हुए उसने कहा कि "जो राजा होकर वेश्या रखता है वह स्वयं उसी की जाति का है" राजा ने कहा "आपने मुझे भी नहीं छोड़ा" दयानन्द उत्तर देता है कि मैं "किसी का पक्षपात किये बिना सत्य को कहता हूं, यह मेरा धर्म है,, वह सत्य व्यवहार ही करता चाहे उसमें कुछ कठोरता भी आजावे। और इसको ही उसके निर्बल समालोचकों ने "असहिष्णुता,, कहा है। दयानन्द अन्धविश्वास या कपट का असहिष्णु है वह काम चलाने के लिये अपने सिद्धान्त को नहीं छोड़ सकता। वह

विना किसी शिकायत के दुख झेलता है। वह वीरोचित हर्ष के साथ दुःख सहन करता है।

इस शक्ति शाली मनुष्य के हृदय में दीन दलितों के लिये कोमल प्रेम भरा है। वह अपने पिता की सम्पत्ति और सुख पूर्ण घर को छोड़ता है और दीनों के भ्रातृ संघ में मिलता है। वह "दृढ़ता" के विद्यालय में अपना संयम करता है। वह कई दिन का उपवास करता है। वह ईंटों का तकिया लगाकर खाली जमीन पर सोता है। वह केवल लंगोटी लगाये स्थान स्थान पर घूमता है। वह राजप्रासाद की अपेक्षा निर्धन की झोंपड़ी को पसन्द करता है। वह पतितों और दलितों को अपने हृदय से लगाता है। एक मनुष्य जो नीच जाति का समझा जाता था उसके खाने को कढ़ी चावल लाता है। दयानन्द प्रेम के उपहार को स्वीकार करता है। एक ब्राह्मण जो वहां उपस्थित था दयानन्द से कहता है:—"आप भ्रष्ट होगये क्योंकि आपने इस मनुष्य का लाया भोजन खालिया"। दयानन्द उत्तर देता है कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट हो सकता है:—या तो वह दूसरे को सताकर प्राप्त किया गया हो अथवा उसमें कोई गन्दी वस्तु मिली हो परन्तु यह गरीब आदमी है जो पसीना बहाकर रोटी कमाता है उसका भोजन सर्वोत्तम है" वह जाति भेद शून्य ईश्वर" की घोषणा करता है। अपने समाज में वह अनाथों जाति पीड़ितों, विधवाओं, दुर्भिक्ष से सताये हुओं, दीनों छोटी छोटी जाति के पुरुषों और सबको सम्मिलित करता है।

यदि आज वह हमारे साथ भौतिक शरीर युक्त होता तो वह किन भावों से भारत को देखता। मन्दिरों को, स्कूलों को, दलित जातियों को, ग्रामीणों को, और पीड़ित स्त्रियों की ओर देखो, जिनसे एक दिन आर्यावर्त्त बना था। मेरा विचार है कि

उसने अपना सन्देश केवल एक समाज के लिये ही नहीं छोड़ा है प्रत्युत सारी जाति के लिये। यह पुरुषशक्ति और बल का सन्देश है। अपने वेद भाष्य में लिखते हैं "यह आवश्यक है कि मनुष्य परमेश्वर की सहायता से धर्म पूर्वक अपने शरीर विद्या और आत्मबल की वृद्धि करें" और फिर लिखते हैं: - "जब तक मनुष्य ईश्वर भक्त और बलवान न हो जावें उन्हें ऐश्वर्य प्राप्ति नहीं हो सकती। यह शक्ति का सन्देश आत्मसमर्पण का सन्देश है। आत्मसमर्पण को आर्यावर्त्त में यज्ञ कहते थे और ऋषि दयानन्द ने बतलाया कि "पशुवध का यज्ञ से कोई सम्बन्ध न था" हमारे अन्दर जो पाशविक वृत्तियें हैं उनका हनन करना चाहिये। उससे 'पार्थक्य, उत्पन्न होता है। हमें दीनों और दलितों से सहयोग का प्रयत्न करना चाहिये। यह वह यज्ञ है जिसे करने को दयानन्द भारत के युवकों को पुकारता है।

युवको ! यदि तुम जाति की सेवा करने को उत्सुक हो तो सादे और मजबूत बनो और दीनों तथा दलितों के पास जाओ, ग्रामीणों के पास जाओ जो 'आशा, और 'विश्वास' के सन्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। शक्ति का सन्देश लेकर जाओ और इस जाति की रात्रि में 'आत्मिक, शक्ति का 'प्रदीप, अपने साथ ले जाओ।

—०—
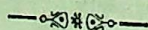
"जहाँ कृष्ण बंशी बजाता था"

—∞※∞—
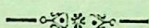
आर्य-मार्ग को प्रकाशित करने के लिये भगवान् ने दयानन्द के हाथों में एक "प्रदीप" दिया। प्राचीन आर्य्यावर्त्त की जैसी झलक मुझे दयानन्द में दिखलाई देती है वैसी बहुत कम दूसरों में दीखती है। दयानन्द मुझे आर्य्य-भारत का प्रकाशक, भारतीय भारत का चिन्ह, प्रभात का देवदूत और भविष्य का अग्रसन्देश हर प्रतीत होता है। उसके देहान्त को चालीस वर्ष से अधिक हो गये। एक महीने के पश्चात् उसके हज़ारों भक्त और शिष्य मथुरा में एकत्रित होंगे, जहां ऋषि का दूसरा जन्म हुआ था। मथुरा में ऋषि को विरजानन्द मिले। मथुरा में वह मकान अब तक विद्यमान है जहाँ इस वैदिक यति का निवास था। कब आर्य्य समाज उस भवन को प्राप्त कर उसे एक नये मन्दिर के रूप में स्थिर रखने का प्रबन्ध करेगा जहाँ कि पूर्व के दो तपस्वी ऋषियों ने आकर अपना कार्य्य किया और ईश्वराधना की थी? मथुरा में ही ऋषि दयानन्द ने अपने मिशन पर आने की पुकार सुनी थी।

मथुरा, गोपाल कृष्ण की पवित्र भूमि, हिन्दू हृदय को प्यारी, अतिशय प्यारी है। जब मैं शताब्दी के दिन मनुष्यों की भीड़ को उस स्थान पर ऋषि दयानन्द को श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने के लिये एकत्रित होने का चित्र खींचता हूँ मेरा मन एक क्षण के लिये एक दूसरे दृश्य की ओर चला जाता है।

गृध्र कूट पर्वत की गुफा! जहां बुद्ध भगवान ने समाधि

लगाई थी। वहीं पर कई शताब्दियों के पश्चात् एक चीनी यात्री आया। वह फूलों का सादा उपहार ले गया। जब वह गुफा के निकट पहुँचा तो उसका हृदय मनो भावों के आवेश में भर गया और नेत्र अश्रुओं से।

मैं भी एक यात्री हूँ। हे प्राचीन आदर्श के ऋषि! मैं प्रेमाश्रु पूर्ण नेत्रों के साथ तुझे अपने प्रेम की माला अर्पण करूगा।

लोगों ने तुझे सताया, क्यों कि तू प्राचीन ज्योति का साक्षी था। परन्तु तू अपने विश्वास में दृढ़ और दुःख सहन में धीर था।

आज तेरे देश निवासी तेरे जन्म दिन को गीतों के गीत से—उन वैदिक सूक्तों से जिन्हें इतिहास के प्रभात में तपस्वियों ने गाया था—मना रहे हैं।

आज मुझे प्रतीत होता है कि पक्षी भी उन कुञ्जों में कलरव कर रहे हैं जहां मेरे हृदय के आराध्य देव श्री कृष्ण ने वंशी बजाई थी।

दयानन्द तुम मरे नहीं हो। तुम अब अकेले नहीं हो! तुम चालीस वर्ष से अधिक के काल में और भी महान् हो चुके हो! तुम्हारा स्वप्न बहुत से हृदयों में पहुंच चुका है और तुम्हारा सन्देश अनेकों मनों मे गूंज रहा है।

इस प्रेम और उत्साह से भरे पूर्वीयदेश में तुम्हारे निज जाति के भविष्य के विश्वास ने बहुत सी उच्च आत्माओं में एक ज्वाला प्रज्वलित कर दी है!

तुम अपनी इस प्राचीन जाति को प्रोत्साहन देने वाले हो!

मैं तुम्हें देख रहा हूँ ! हे पुनरूज्जीवित भारत के ऋषि—मैं तुम्हें अपने "स्वप्न" और "सङ्गीत" के साथ मिला देख रहा हूँ।

यह सङ्गीत शक्ति सम्पन्न, स्वाधीन आर्य्य जाति का है"

यह स्वप्न दिव्य मनुष्यता का है।

(पथ प्रदीप)

॥ समाप्त ॥

पुस्तक मिलने के पते—

(१) श्री पं० लालमणि शर्मा वैद्य,
शिवहारा विजनौर
E. I. R.

(२) शिवशर्म्मा ऐन्ड सन्स,
आर्यबुकडिपो
सम्भल (मुरादाबाद)

Printed by:-
B. Krishna Nand at the Shradhha Nand
Press, Delhi.